Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 4, March-2019, ISSN 2230-7540

हिन्दी की रीतिकालीन कविता: पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता

Meena Kumari*

Research Scholar, Department of Hindi, Delhi University, Delhi

सार - ***हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्व मध्यकाल भक्त-कवियों का काल था, जिनकी अमृतमयी वाणी का प्रभाव जन-जन पर पड़ा था। उनके काव्य में आध्यात्म रस था, संगीत की स्वरलहरी थी और साथ ही निरहंकार व्यक्तित्व का था निमज्जन। वे ईश्वर के गुणगान में मस्त थे। वे त्यागी-महात्मा किसी लौकिक एषणा से काव्य-रचना में प्रवृत्त नहीं हुए थे। वे केवल आत्मतुष्टि- 'स्वान्तः सुखाय' के लिये काव्य-रचना करते थे। संतों-भक्तों का काव्य मनुष्य-जीवन को उदात्व, निष्कलुष और ईश्वरोन्मुख करने वाला काव्य था- उसे आदर्श भावभूमि पर स्थापित करने वाला काव्य था, वह जीवन का एक व्यापक व्याख्यान था।***

----------X----------

उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल का काव्य मनुष्य के ऐहिक जीवन का काव्य है, मनुष्य की वास्तविकताओं का काव्य है। उसमें राग है, रस है और जीवन का उल्लास। वहाँ त्याग नहीं अनुराग है। लगभग पौने तीन-सौ वर्षों तक रीति कविता की धारा प्रवाहित रही और लगभग चार हजार कवियों की वाणी इस रसधारा में निमज्जित होती रही। आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा के साहित्य-इतिहास में यह काव्य धारा इस वेग से इतने परिणाम तथा इतने काल तक प्रवाहित हुई हो इसका पता नहीं चलता।

इस कालखण्ड के महानतम कवियों में केशव, बिहारी, देव, मतिराम, भूषण, घनानंद, ठाकुर और पद्माकर हैं, जिनकी रचनाएँ मध्यकाल से लेकर बीसववीं शती ईस्वी के मध्य तक अत्यंत प्रचलित रहीं और चर्चा की विषय बनी रहीं। गाँव का मध्य वर्ग तो इन्हीं कवियों के छन्दों को रूचिपूर्वक पढ़ता था। उनके लिए मनोविनोद का, कालयापन का सर्वोतम साधन यही कविता थी। अपने समय में ही केशव और बिहारी की इतनी प्रसिद्धि हुई कि उनकी रचनाओं की प्रतियाँ देश के विभिन्न ग्रंथागारों में पहुँच गई, उनकी टीकाएँ हुई। 'बिहारी सतसई' तो इतनी प्रसिद्ध हुई कि संस्कृत भाषा में भी उसकी टीका हुई। लोकप्रियता की दृष्टि से तो उसे 'रामचरित मानस' के उपरान्त सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ। उसकी चित्रात्मकता और भंगिमाओं के सूक्ष्म चित्रण ने तो चित्रकारों को भी, चित्र उकेरने की प्रेरणा दी। हिन्दी को अखिल भारतीय चरित्र रीतिकालीन कविता के द्वारा ही प्राप्त हुआ था। गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र तथा ट्रावनकोर के अनेक कवियों ने हिन्दी रीति कविता का मार्ग अपनाया था। इसका प्रमाण है इनके द्वारा रची गयी रचनाओं की उपलब्धता।

किंतु, रीतिकालीन काव्य पर आलोचकों ने उचित विचार नहीं किया। आचार्य शुक्ल ने अनेक रीतिकालीन कवियों के काव्य की प्रशंसा की थी, आगे चलकर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकावय ग्रंथों पर टीकाएँ लिखीं। उनका संपादन किया-अनेक शोध प्रबन्ध भी रीतिकवियों के काव्य पर प्रस्तुत किये गये तथापि रीतिकालीन कवि और उनकी कविता की आलोचक अनुचित उपेक्षा करते रहे। आचार्य शुक्त जैसे आलोचक की कुछ प्रतिकूल टिप्पणियाँ आगे के आलोचकों को प्रेरित करती रहीं और वे रीतिकालीन कवियों को दरबारी, चाटुकार, जनता से दूर तथा अश्लील श्रृंगार के रचनाकार कहकर कोसते रहे। कुछ आलोचक इन कवियों को दरबारी न कहकर सामंत कहने लगे। आश्चर्य होता है यह देखकर कि कुछ नयी बात कहने के फेर में हम वास्तविकता को ही नजरंदाज कर देते हैं। जो अपने भरण-पोषण के लिए आश्रय की तलाश में हो वह भला सामंत कैसे हो सकता है? राजरदबार में पहुँचने और आश्रय प्राप्त करने के लिए भी एक विशिष्ट आचरण और विशिष्ट आवरण की दरकार होती थी। अब भी है। क्या इससे किसी कवि को, बिहारी को, देव को सामंत कहना उचित होगा? हाँ, घनानंद को अपवाद मान सकते हैं, जो मोहम्मद शाह रंगीले के मीर मुंशी थे लेकिन वह कितने स्वच्छंद प्रकृति के थे, यह तो इतिहास जानता है। और

www.ignited.in

आचार्य शुक्ल समेत सभी इतिहासकारों ने यह जानते हुए भी कि वे बादशाह के मीर मुंशी थे, उनकी प्रशंसा की है। अतः सामंत कह देने के पीछे यदि कवि का अवमूल्यन है, तो घनानंद के संबंध में आलोचकों को अपना मतंव्य बदलना पड़ेगा। आलोचना करना भी एक तरंग है, जो चाहे कह जाएँ। आज स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि कुछ 'असमझवार' आचार्य इन कवियों के काव्य को विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम से हटाने का उपक्रम कर रहे हैं। ऐसे भद्रजनों के लिए सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवरसिंह के इन विचारों को भी ध्यान में रखना चाहिए जिन्होंने एक संगोष्ठी में हिन्दी रीतिकाव्य को इतिहास की 'सुरम्य घाटियाँ' कहा था। कुछ समय उपरांत एक अन्य संगोष्ठी में उन्होंने न केवल भक्तिकाल, वरन् रीतिकाल की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है- 'आर्य समाजी संस्कार के कारण और एक दौर के आदर्शवादी पूर्वाग्रहों के कारण समूचे रीतिकाल को हमने अश्लील श्रृंगार परक आदि-आदि और पतनशील कहकर दूर किया था। उसमें हमारे बहुत बड़े विद्वानों का, 'शुक्लजी' का भी थोड़ा हाथ है, हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का भी हाथ है। थोड़ा-थोड़ा ही, लेकिन कुल मिलाकर के देखें तो रीतिकाव्य के बारे में, काल के बारे में शुक्ल जी ने जो कहा हो, लेकिन रीति के कवियों पर जो टिप्पणियाँ इन्होंने की हैं, 'घनानंद' को तो साक्षात् रसमूर्ति कहा है। उन्होंने मतिराम की प्रशंसा की है, 'देव' की, की है 'बिहारी' की, की है पद्माकर की, की है। द्विवेदी जी के यहाँ रीतिकालीन कविताएँ जो है, कभी-कभी किसी उपन्यास की बीज-भाव बन गई हैं। कवि मंडन का यह सवैया-

अलि हों तो गुई जमुना जल को सो कहा कहौं वीर। बिपत्ति परी।

घहराय कै कारी घटा उनई इतनेई में गगारि सीस धरी।।

रपट्यो पग, घाट चढ़यो न गयो, कवि मंडन दै कै विहाल गिरी।

चिर जीवहु नंद के वारो, अरी, महि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी।।

पूरा का पूरा गूँजता है 'चारू चन्द्र लेख' में यहाँ से वहाँ तक। 'नातीमाता' उसी को संस्कृत में गाती है-

मताहं कालिंदी गृह सलिलमानेतु मनसा।

घनाद्घूर्णेमेंघैर्गगनमभितो मेदरम भूत।

भभृशं धारासारैरप तमसहाया क्षितितले।

जयत्वडेक् गृहन् पटु नट कलः कोपि चपलः।।

तो इसलिये रीतिकाल पर फिर विचार करें। इसलिये भी कीजिए कि ये दोनों (भक्ति और रीति) युग हमारे हैं, मैं इनको सबको 'स्वर्ण युग' मानता हूँ।

रीतिकालीन कवियों पर दरबारी होने का, अश्लील श्रृंगार परक चित्रण करने का और जनता से दूर रहने का लांछन लगाया जाता रहा, लेकिन इन कवियों की लोकप्रियता में स्वतंत्रता प्राप्ति से कुछ काल पूर्व तक कोई कमी नहीं आई। उत्तर भारतेन्दु युग से स्वतंत्रता पूर्व तक कस्बों और गाँवों में रीतिकालीन कविता की पढ़ंत चलती रही। कवि मंडल स्थापित हुए, उनमें समस्यापूर्तियों के रूप में और कभी-कभी स्वतंत्र रचनाओं के रूप में ब्रज भाषा में काव्य रचना होती रही। नगरों में प्रेमचन्द थे, प्रसाद थे, निराला थे, लेकिन ग्रामीण जन अपनी चैपालों में बैठकर आज भी देव, मतिराम और पद्माकर के छंदों की लय में मस्त थे। मनोविनोद के अन्य परिष्कृत साधन न होने के कारण अधिकांश ग्रामवासी इन्हीं कविताओं द्वारा अपना मनोरंजन करते थे। आज ग्रामंचल में काव्य-सरिता सूख गई है। यदि किसी सामान्य शिक्षित ग्रामवासी से आज के किसी कवि का नाम पूछा जाए, तो शायद ही वह बता पाए। मैथिलीशरण गुप्त अपनी 'भारत भारती' के कारण और निराला अपने निराले व्यक्तित्व के कारण सम्भवतः गाँव में पहुँचे होंगे, अन्य कोई शायद ही। स्पष्ट पढ़े जाते रहे। अपनी भावसंपदा और चमत्कारपूर्ण वर्णनप्रियता तथा सूक्ष्म भाव भंगिमाओं के चित्रण के कारण वे चर्चा में बने रहे। इस काल के कवियों और उनकी कविता के विषय में, उनके पुनर्मूल्यांकन में हमें अपनी दृष्टि बदलनी होगी। पूर्व आलोचनाओं के प्रभाव से पृथक् रहकर स्वयं प्रमुख कवियों के काव्य को यथार्थवादी दृष्टि से देखना होगा।

रीतिकालीन कवियों के काव्य में प्रायः सामान्य नारी का चित्रण है। उसके रूप का, यौवन का, विरहानुभूति का, हाव-भाव का, जितना मोहक, सूक्ष्म और यथार्थ चित्रण इन कवियों के काव्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र कम ही मिलता है। यहाँ किसी राजमहिषी अथवा राजकुमारी का वर्णन नहीं हुआ है, यहां अहीर की छोहरियां काव्य की गरिमा बढ़ाती है, नटिनी है, दुध दही बेचनेवाली ग्वालिनें हैं। 'एक अहीरनी' के सौन्दर्य का मनोरम चित्र 'देव' की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

माखन सो मन, दूध सो जोबन, है दधि ते अधिकै उर ईठी,

जा छवि आगे छपाकर छाँछ बिलोकि सुधा बसुधा सब सीठी।

नैनन नेह चुवै कहि 'देव' बुझावत बैन वियोग अँगीठी।

www.ignited.in

ऐसी रसीली अहीरी अहो! क्हो क्यों न लगै मन मोहनै मीठी?

छोड़ दीजिए राधा के पौराणिक स्वरूप को और देखिये एक सामान्य युवती की मनोदशा और उसके हाव-भाव तथा देखिये उसकी संभावित विरह-प्रसूत देह-दशा का चित्र क्रमशः निम्न दोहों में-

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।

सौंह करै भौंकनि हँसे, देन कहे नटि जाय।।

ललन-चलनु सुनि पलनु मैं, अंसुवा झलके आई।

भई लखाइ न सखिन हूँ, झूठै ही जमुहाइ।

ल्लन-चलन सुन चुप रही, बोली आपु न ईठि।

राख्यो गहि गाढ़ें करैं, मनो गलमली डीठि।

रीतिकालीन कवि न दरबारी थे, न चाटुकार। वे तत्कालीन समाज के यथार्थवादी रचनाकार थे। जिस समाज में वे रहते थे- उसका ही उन्होंने वर्णन किया है। यत्र-तत्र अपने आश्रयदाता की उन्होंने कुछ छन्दों में प्रशंसा की है और उन्हें प्रसन्न रखने के लिए नायिकाओं के विविध अंगों का, मनोभावों का, हावों का और अनुभावों का आह्नादक चित्रण भी उन्हें करना पड़ा था। ऐसा करके ही वे अपने भरण-पोषण की समस्या का समाधान कर पाते थे-ऐसा करना उनकी विवशता थी। इनसे पूर्व भक्त कवि विद्यापति राज्याश्रय में थे और उन्होंने घोर श्रृंगारिक पदों की रचना की थी। सूरदास और नंददास भी इनमें कुछ कम नहीं थे। सूरदास की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत हैं।

जिन्हें परिवार में स्पष्ट नहीं किया जा सकता-

नीबी ललित गही जदुराई।

जहहिं सरोज पर्यौ श्रीफल पर तब जसुमति गइ आइ।

करि सिंगार दोऊ अरसाने।

प्रथम केलि जमचुर सुनि हरषे पुनि पौढ़े दोऊ लपटाने।

आज जिस समाज में हम रह रहे हैं, वहाँ दरबारगीरी और चाटुकारिता खूब फूल-फल रही है और 'रीतिकाल' भी पूरी उमंग पर है। श्रृंगार का अनावृत रूप तो नित्य ही सिनेमा घरों और घर के टी॰वी॰ सेटों पर देखने को मिलता है। ऐसा श्रृंगार तो रीति कविता में ढूँढनें पर भी नहीं मिलेगा। वहां शब्द-चित्र हैं और यहां अनावृत देह चित्र। आज 'श्लील' और अश्लील की परिभाषाएं बदल गई हैं। अब कुद भी अश्लील नहीं रह गया है। हां यदि अश्लील ढूँढना ही है तो कुछ आलोचनों को रीति कविता में ही मिलेगा। आज की अल्पवस्त्रावृता नगरीय सुन्दरियों जितनी मुक्ता का आनंद ले रही हैं (यदि उसे आनन्द माना जाए तो) रीतिकालीन काव्य की नायिका निश्चय ही इस आनंद से वंचित रही। उसकी एक मर्यादा थी। आज मूल्य बदल गये हैं। आज लज्जा अब रमणी का आभूषण न होकर मुक्ता की बाधक बन गई है। रीति काव्य की नायिका कृष्णवस्त्रावृता अथवा शुक्लवस्त्रावृता होकर अंधेरी अथवा उजाली रात्रि में प्रिय-मिलन के लिये जाती है। वहां मर्यादा का ध्यान है, लाज है। वहां प्रेम है, पर संयत है। श्रृंगार है पर आवृत है। रीतिकालीन कवि अनावृत देह-सौन्दर्य का चितेरा न होकर मन के सौन्दर्य का, मनोदशाओं औश्र चित्तवृतियों का चित्रकार है। बिहारी इस कला में बड़े प्रवीण हैं। उनके द्वारा चित्रित 'चल' तथा 'स्थिर' सौन्दर्य के दो चित्र द्रष्टव्य हैं-

कंज नयनि मंजनु किये, बैठी ब्यौरति बार।

कच अंगुरी बिच दीठि दै चितवत नंद कुमार।

नायिका का केशों के बीच से नंद कुमार को देखना और केशों को सुलझाते जाना-इन दो व्यापारों में गति है तथा जीवन का स्पन्दन है।

अहे दहेड़ी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि।

नीके है छींके छुवै, ऐसैं ई रहि, नारि।।

यह स्थिर सौंदर्य का चित्र है।

श्रीतिकाल के कवियों का जीवन अत्यंत संघर्षमय था। उनके भरण पोषण के लिए, पारिवारिक उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिये कोई निश्चित और नियमित आव नहीं थी। कोई व्यापार व्यवसाय भी नहीं था। तुलसीदास के शब्दों में कहें तो न किसान को खेती थी और न वणिक के लिये व्यवसाय था। अतः उन्हें किसी आश्रयदाता की सदैव खोज रहती थी, जिसकी प्रशंसा करके वे कुछ धन प्राप्त कर लेते थे- इसके लिए उन्हें विवश समझौते करने पड़ते थे। कवि देव 16 वर्ष की आयु से लेकर जीवन की सांध्यवेला तक अर्थात् 94 वर्ष तक आश्रयदाता की खोज में रहे। अनेक बार उनका मन अशांत हुआ और वैराग्य की कंदराओं की ओर भागने लगा- 'देव' कह उठे-

'बीचु मरीचन के मृगलौं अब धावे न रे सुन काहू नरिन्द के।'

www.ignited.in

अर्थोपार्जन के हेतु भले ही उस काल के कवियों ने आश्रयदाता की प्रशंसा में कुछ छंद लिखे हों और नायिकाओं का श्रृंगारपूर्ण चित्रण किया हो, किंतु अंतःकरण से वे इनसे परे थे- देव की यह पंक्ति द्रष्टव्य है-

'पदुमिनि तू ही पट्पद को परमपदु'।

'देव' का 'आदर्श कवि' का मानदण्ड भी द्रष्टव्य है-

'वानी पुनीत ज्यौं देवधुनी रस आदर के गुन गाहौ

सील-ससी, सविता-छविता, कबिताहि रचै, कवि ताहि सराहौ।'

रीतिकालीन कति उदार विचार धारा के थे। उनमें जातिगत, वर्णगत जैसे भेद- भाव नहीं थे। उनमें सात्प्रादायिक वैषम्य भी नहीं था। नारी के प्रति भी उनमें सदय-भावना थी।

'देव' कति की उदार विचारधारा इन पंक्तियाँ में व्यक्ति हुई है-

हैं उपजे रज बीज ही ते, बिनसेहू सबै छितिछार के छाँडे।

एक से देखु कछु न बिसेखु ज्यौं एकै उन्हार कुम्हार के भांडे।

तापर ऊँच, और नीच बिचारि वुथा बकि वाद बढ़ावत चांडे।

वेदनि मूंदु कियो इन दूंदु कि सूदु, अपावन पावन पांडे।।

इस युग के कवियो का दरबार में रहना और कविता पढ़ना विवशता थी-दरबार में ही अन्य कतियों के बीच उनकी की श्रेष्ठता सिद्ध होती थी तथा सराहना और धन की प्राप्ति होती थी। जनता के बीच कविता पढ़ने से सराहना भले ही उन्हें मिल जाती, किंतु धन की प्राप्ति की संभावना नहीं रहती थी क्योंकि जनता स्वयं धनाभाव में रहती थी। दूसरे राजदरबारों में कविता पढ़ना और राज्याश्रय प्राप्त करना परम्परामूलक भी था। कान्यकुब्जेश्वर के दरबार में कवियों का सन्मान होना प्रसिद्ध है। फारसी के प्रसिद्ध कवि फिरदोसी का गजनी के दरबार में होना और 'शाहनामा' पर, समय पर पुस्कार न प्राप्त करने वाला कवि अच्छा लगता है-

'ठाकुर सो कति भावत मोहि जो राजसभा में बड़प्पन पावै।'

किंतु अधिकांश कतियों मोहि जो राजसभा में बड़प्पन-प्राप्ति के लिये अपने स्वाभिमान को नहीं त्यागा। कहते हैं कवि 'ठाकुर' ने अपने आश्रयदाता हिम्मत बहादुर द्वारा कुछ कटु वचन कहे जाने पर म्यान से तलवार निकाल ली और बोले-

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,

दान जुद्ध जुरिबें में नेकु जे न मुरके।

ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,

जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।

कवि ठाकुर ने तुकबन्दी करने वाले और परम्परागत उपमानों को एक साथ जुटाकर कविता करने वालों की अच्छी खबर ली है-

'लोगन कवित कीवो खेल करि जानो है।'

'ठाकुर' जैसे आलोचक उस युग में थे और ब्रजनाथ जैसे काव्य-पारखी भी विद्यमान थे जो सच्ची और हृदयग्राही कविता की कद्र करना जानते थे। वे घनावंद के काव्य के प्रशंसक थे। उनकी प्रशंसा वास्तविक थी और घनानंद के काव्यीय गुणों और भाषिक संरचना को उजागर करती थी।

घनानंद प्रेम की पीर से कवि थे, वे अपने समय के अन्य कवियों से पृथक् थे। उनका कथन था-

'लोग हैं लागि कबित बनावत, मोंहि तौ मेरे कवित बनावत'

श्रीतिकाल की कविता को जितनी बार पढ़ा जाता है उतनी ही बार नयी सौन्दर्यानुभूति होती है। रीति कविता अपनी लयात्मकता और संगीत तत्व की उपस्थिति के कारण भी अत्यंत प्रिय रही है। रंग-योजना और शब्दचित्रों की निर्मिति हमारे हृदय में भाव-छवियों के बिम्बों का सृजन करती है- छन्दों की प्रवाहमयता में हम स्वयं निरूपाय हो जाते हैं। मतिराम, देव, घनानंद और पद्माकर के अनेक छंद मधुमिश्रित हैं। रीतिकालिन कविता के पुनरीक्षण की आवश्यकता इसलिए भी है कि शुद्ध कविता की दृष्टि से यह उस युग की कविता है, जहां न कोई वाद है न सांप्रदायिक विचार धारा का प्रतिबिम्ब। जहां निःस्वार्थ और विशुद्ध प्रेम की कथा है तथा जहां सामाजिक संस्कृति का उत्कर्ष है। जहां सांस्कृतिक विकास का पथ रीतिकालीन कविता से होकर आया है। तथा जहां यौवन है, उल्लास है, प्रेम का मुक्त क्षेत्र है। यह युवा-हृदय की कविता है। अतः यह आज भी उसी सहृदयता से पढ़ी और निखरेगी। इसका सौन्दर्य क्षण-क्षण पर नवीनता धारण करता है। इसमें जितना ही अवगाहन करो, उतना ही आंनद देती है। मतिराम के शब्दों में-

ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे है नैननि त्यौं-त्यौं खरी निकरै सी निकाई।।

www.ignited.in

संदर्भ

1. चारूचन्द्र लेख - उपन्यास - पृ॰ 138, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. भक्तिकाल और आधुनिक समय-सं. डॉ. रतनकुमार पाण्डेय, पृ॰ 11,18.
3. चारूचन्द्र लेख - उपन्यास - पृ॰ 132, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. भक्तिकाल और आधुनिक समय-सं. डॉ. रतनकुमार पाण्डेय, पृ॰ 14.
5. चारूचन्द्र लेख - उपन्यास - पृ॰ 139, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. भक्तिकाल और आधुनिक समय-सं. डॉ. रतनकुमार पाण्डेय, पृ॰ 12.
7. चारूचन्द्र लेख - उपन्यास - पृ॰ 130, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. भक्तिकाल और आधुनिक समय-सं., रतनकुमार पाण्डेय, पृ॰ 10.

Corresponding Author

Meena Kumari*

Research Scholar, Department of Hindi, Delhi University, Delhi

meena.kumari101184@gmail.com